RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-02
Issue-07
July-2017

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com

पर्यावरण विशुद्धिकरण में संस्कृत की उपादेयता

डॉ0 रामानन्द कुमार रमण

एम0 ए0; संस्कृत विभाग भू0 ना0 मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, बिहार

समस्त मानव जीवन में निरंतर दो शक्तियों की क्रियाएं और प्रतिक्रियायें देखी जाती है। पहली है धार्मिक क्रियायें और दूसरी है अधार्मिक क्रियायें। ये एक–दूसरे के विरूद्ध निरंतर काम करती है और हमारे चारो ओर बाह्य जगत में दिखाई देने वाली तथा अन्तर्जगत में उपलब्ध होने वाली समस्त जटील घटनाओं की निरंतर क्रीड़ा के कारण हैं। ये दो विपरित शक्तियां बाह्य जगत में आकर्षण–विकर्षण अथव केन्द्राभिमुख, केन्द्र विमुख शक्तियों के रूप में और अन्तर्जगत में राग–द्वेष, शुभ–अशुभ के रूप से प्रकाशित होती है। इन दो विपरित शक्तियों का कार्य क्षेत्र जितना उन्नत होता है उनका प्रभाव भी उतना ही तीव्र होता है।

भारत एक ऋषि प्रधान देश है। हमारी सभ्यता एवं संस्कृति विश्व की अनुपम भेंट है। इतिहास गवाह है कि विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में भारत एक है। वस्तुतः ऋग्वेद को संसार का प्राचीनतम ग्रंथ माना गया है। अतः वैदिक संस्कृति विश्व की प्राचीन संस्कृति है। चार वेद, छः वेदांग और अठारह पुराणों में वैदिक जीवन का दिग्दर्शन कराते हैं। उत्तर वैदिक जीवन का निरूपण विभिन्न पुराणों तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थों में मिलता है।

आज पर्यावरण का संकट पैदा हो गया है। दूसरे शब्दों में पर्यावरण इतना दूषित हो गया है कि या तो पर्यावरण की सुरक्षा व संरक्षण के तुरंत उपाय करने पड़ेंगे अन्यथा मानव जीवन का विनाश अवश्यंभावी है। आज विज्ञान ने अत्यधिक उन्नति कर ली है। यह विज्ञान के उत्कर्ष के साथ–साथ उसके दुरूपयोग की भी कहानी है, जिसमें सुखद अंश कम और दुःखद भाग अधिक है। आज तक जो हानियां हुई है और जो समस्याएं उत्पन्न हुई है उन्हीं का सामाधान हाथ नहीं लग रहा है, फिर अगले ही दिनों में ना जाने क्या दुर्गति उत्पन्न करेगा।

ऐसे समय में यह जानना समीचीन होगा कि क्या हमारे पुर्वजों को पर्यावरण का ज्ञान था और क्या उन्होंने इसके संरक्षण के उपाय किये थे ? किन्तु हमें इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि प्राचीन समय में परिस्थितियां भिन्न थी। कई मुद्दे तब महत्वपूर्ण नहीं रहे होंगे और उन दिनों समस्या विपरीत भी हो सकती है। यथा जनसंख्या की समस्या। एक अन्य ध्यान रखने वाली बात यह भी है कि देश, काल के अनुसार प्राचीन साहित्य में पर्यावरण का संरक्षण के सीधे निर्देश नहीं मिलते अपितु सूत्र रूप में उसके विभिन्न घटकों के विषय में जानकारी उपलब्ध होती है।

वैदिक मानव प्रकृति में रचा–बसा था। वह प्रकृति से समन्वित था। प्रकृति की समस्त रचनाओं को अपनी भान्ति नियत्ता की रचनाएँ मानता था। ईशावास्योपनिषद् का प्रयास मात्र इसी भावना को प्रतिपादित करता है। ?

''ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंचित् जगत्यां जगत्।
तेन तयक्तेन मुञ्जिथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्'।।''

प्रकृति के सामंजस्य की इससे अच्छी भावना कहाँ मिलेगी ? वह तो सर्वत्र शांति और समन्वय की कामना करता है–

''द्योः शान्तिरन्तरिक्षवं शान्ति पृथिवी शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः.....[2]''

वैदिक मनुष्य प्रकृति का वन्दन करता ह, उसके विभिन्न घटकों का दैवीकरण करता है–द्यावापृथिवी, अग्नि, पर्जन्य, उषा, मित्र, वरूण आदि प्रकृति के तत्व में वह सम्बन्ध खोजता है और पृथिवी को माता कहकर पुकारता है–

'' माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः[3]''

पर्यावरण की शुद्धि में संस्कृत मनिषियों ने वृक्षारोपण को विशेष महत्व दिया है।

''दश कूप समावापी, दशवापी समो हृदः।
दश हृदः समः पुत्रोः दश पुत्र समो दुमः[4]।।''

पर्यावरण की शुद्धि में अश्वत्थ अर्थात् पीपल वृक्ष की महिमा अति प्रसिद्ध है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं–

''अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां ऋतुनां कुसुमाकाः।''

अपि च–

मुले विष्णु स्थितो नित्यं स्कन्धे केशव एव च।
नारायणस्तु शाखासु पत्रेषु भगवान् हिरः।।
फलोऽच्युतो न सन्देहः सर्व देवैः समन्वितः।

प्राचीन मुनीजन वृक्षों को पुत्र की तरह मानते थे–

''वनेऽस्मिन् मानके नित्यं पुत्रवत् परिरक्षसे।
पत्राकुंरः विनाशायः फल मूलः भवाय च।।''

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

कवि कुलगुरू महाकवि कालिदास ने अपने जगत् प्रसिद्ध रूपक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में पर्यावरण सन्तुलन हेतु वृक्षारोपण महोत्सव का संदेश दिया है–

''आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्याः भवत्युत्सवः।[5]''

पद्मपुराण में तुलसी वायु को पवित्र करने वाली कही है।[8]
संस्कृत वाङ्मयः में अनेक वृक्षों को किसी न किसी देवता से समन्वित किया गया है–

''दैवतानि च यान्यस्मिन् वने विविध पादपे।
नमस्करोभ्यहं तेभ्यो भर्तुः शंसत मा हृताम्।।

संस्कृत साहित्य में निम्ब वृक्ष पूजनीय माना गया है, आम्र और रसाल वृक्ष वसन्त के मदनोत्सव का मुख्य आकर्षण होता है। धतूरे और भांग को शिव से संयुक्त किया गया है। पलास को ब्रह्म से, सोम को चन्द्रमा से तथा पीपल को विष्णु से संयुक्त किया गया है। इस प्रकार पैड़–पौधों के साथ प्रत्यक्ष और पराक्ष रूप से दिव्यता के दर्शन करना अत्यन्त प्राचीन काल से संस्कृत–साहित्य में रहा है। वैदों में पर्यावरण को स्वस्थ्य बनाने हेतु वन संरक्षण की व्यवस्था का स्पष्ट उल्लेख है। वैदिक काल में वन और वृक्षों की सुरक्षा के लिए विविध अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी।[7] वेदों में वृक्षों के स्वामी एवं उसकी देखभाल करने वाले को वृक्षापति[8] एवं जंगल की आग बुझाने वालों को दावपः[9] कहा जाता था। कौटिल्य के अनुसार ये वनपाल वेतनभोगी होते थे।[10]

पर्यावरण में अन्य प्रदूषणों की अपेक्षा वायु प्रदूषण विशेष हानिकारक होता है। चरक ऋषि ने सम्भावित विकृति अर्थात् प्रदूषण का एवं उससे होने वाले रोगों का विशेष रूप से उल्लेख किया है। मनुष्यों एवं पशुओं की अपेक्षा वायु प्रदूषण के प्रति पौधे कई गुना अधिक संवेदनशील होते हैं। प्रदूषण से जंगलों का विनाश होता है और फसलों की क्षति होती है।[11] वेदों में वृक्षों तथा औषधीय पौधों की गन्ध को कृमियों को नष्ट करने वाला एवं वायु को शुद्ध करने वाला कहा गया है–

'कुसूला ये च कुक्षिलाः कुकुमाः कुरूमाःस्त्रिमाः।
तेनोषधैः त्वं गन्धेव विषूचीनान् विनाशय।।[12]'

वैदिक ऋषियों में अत्रि, कण्व, जमदग्नि और अगस्त्य आदि ऋषियों ने कृमियों को नष्ट करने के अनेक उपाय बतलाएं हैं।[13]
प्राचीन मनीषी जल प्रदूषण के प्रति भी अत्यन्त सजग थे, इसलिए उन्होंने जोते हुए खेतों, शस्य सम्पन्न भूमि में, मार्ग में तथा नदियों और जलाशयों में मल त्याग का निषेध किया है–

''न कृष्टे शस्यमध्ये वा गो ब्रजे जनसंसद्धि।
न वर्त्मनि न नद्यादि तीर्थेषु पुरूषर्षभ।'
नाप्सु नौवाम्तस्वीरे शमशाने न समाचरेत्
उत्सर्ग वै पुरीषस्य मूत्रत्य च विसर्जनम्।।[14]''

मनुस्मृति में भी मूत्र एवं अपवित्र पदार्थों को पानी में न छोड़ने का सन्देश दिया गया है–

''नाप्सु मूत्रं पुरीषं वाष्ठीवनं सा समुत्सृजेत्।[15]''

प्रकृति और पर्यावरण के साथ ऐसा ही सामंजस्य पुराणों और धर्मग्रन्थों में परिलक्षित होता है। प्रकृति के सानिध्य में रहकर मनुष्य ने पेड़–पौधों, जीव–जन्तुओं का गहन अध्ययन किया था। महाभारत में श्रीकृष्ण कहते हैं–

''वनं राजा धृतराष्ट्र सपुत्रो
व्याघ्रस्ते वै संजय पाण्डुपुत्राः।
सिंहाभिगुप्तंन वनं विनश्येत्
सिंहो न नश्येत् वनाभिगुप्तः।।[16]''

महर्षि वेदव्यास ने वृक्षों की तुलना पुत्रों से की है–

वृक्षदं पुत्रवद् वृक्षास्तारयन्ति परत्र च
तस्मात्तडागे सद्वृक्षा रोप्या श्रेयोऽर्थिना सदा।
पुत्रवद् परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः।।

पंचतन्त्राकार पेड़–पौधों एवं जीव–जन्तुओं के संरक्षण के प्रति सचेत होकर व्यंग्यात्मकता का प्रयोग करते हुए पूछते हैं–

''वृक्षांछित्वा पशून्हत्वा कृत्वा रूधिरकर्दमम्।
यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरकं केन गम्यते।।[17]''

हमें पर्यावरण के प्रति सचेत होना होगा पर्यावरण प्रदूषित होने से ऋतु विकार होगा जिसका प्रभाव पृथ्वी पर और क्रमशः औषधियों पर, फलस्वरूप औषधियों में रोग को दूर करने वाला तत्व अर्थात् रस विपाक का प्रभाव कम हो जाएगा। भारतीय मनीषियों ने इस प्रकार के प्रदूषन की भविष्यवाणी सदियों पूर्व कर दी थी, जो आज अक्षरशः सत्य प्रतीत हो रही है। सस्कृत भाषा में शतपथ–ब्राह्मण से लेकर महाभारत और विभिन्न पुराणों में जल–प्रलय का वर्णन मिलता है। महाभारत के वन–पर्व में मत्स्योपाख्यान के अन्तर्गत यह कथा है। हाल के अध्ययनों और केदारनाथ जैसी घटनाओं से भी इस बात को बल मिलता है कि समय रहते यदि हम नहीं चेते तो स्थिति भयावह हो सकती है। लोगों ने अपने आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए व्यापक वन विनाश किया। खेती के प्रसार हेतु चारागाह नष्ट किए। अधिक अन्न उपजाने के ललक में उर्वरकों और कीटनाशक औषधियों के प्रभाव को बढ़ावा दिया। फलस्वरूप वर्षा का ताण्डव, सूर्य का प्रकोप और रेगिस्तान का प्रसार हुआ। भूमि की उर्वरा शक्ति घट रही है। भूमि रस विहीन हो गई है। धरती माता के लिए उसकी मानव सन्तति भार हो रही है।

समग्र संस्कृत वाङ्मय में प्रकृति एवं मनुष्य के बीच एक अन्योन्य सम्बन्ध है और भविष्य में भी रहेगा। प्रकृति एवं मनुष्य एक–दूसरे के लिए है, इसमें इतना घनिष्ट संबन्ध है कि इसका निर्धारण नहीं हो सकता कि कौन इसमें आधेय है और

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

कौन आधार ? मनुष्य और प्रकृति में प्रकृति हमारी माँ है और पुत्र हम मनुष्य हैं, क्योंकि हमें जिस वस्तु की आवश्यकता है प्रकृति हमे सुलभ कराती है। व्यक्ति, मानव और प्रकृति के बीच में उत्पन्न हुआ, उसी में रह रहा है और उसी में विलीन हो जाएगा।

अन्त में कहना चाहूँगा कि पर्यावरण सन्तुलन में जितना योगदान वृक्ष, वनस्पतियों का है उतना प्रकृति के किसी अन्य घटक का नहीं। इनके इसी उदात्त महत्त्व देखकर प्राचीन ऋषि–मुनियों ने इनके पोषण और संरक्षण को देव–अराधना जितना पुण्य फल देने वाला माना था। अतः हम प्रत्यक्ष ही नहीं परोक्ष को भी समझें।

संदर्भ

1. ईशोपनिषद् पृ0 1
2. यजुर्वेद, 36.17
3. अथर्ववेद, 12.1.12
4. पदमपुराण, 144
5. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम, 4
6. पदमपुराण, 6.23.33
7. यजुर्वेद, 30.19 : वनाय वनपं वन्यगोरण्यात् दावपम्।
8. वहीं, 16.19
9. वहीं, 30.14, 30.19
10. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, अध्याय 3, पृ0, 513
11. चरकसंहिता, 3.6
12. अथर्ववेद, 8.6.10
13. वहीं, 2.32.3 : अत्रिवतवः कृमियो हन्मि कण्ववत् जमदग्निवत्।
14. विष्णुपुराण, 3.11
15. मनुस्मृति, 4.56
16. महाभारत, उद्योगपर्व 29
17. पंचतन्त्र, 3.105

© RRIJM 2015, All Rights Reserved